॥ श्रीहरिः ॥

भगवत्प्राप्तिके लिए भविष्यकी अपेक्षा नहीं

वंदे नंदनंदनं देवं

श्रीहरिः

भगवत्प्राप्तिके लिये भविष्यकी अपेक्षा नहीं

पूज्य स्वामीजी श्रीरामसुखदासजी महाराजके

प्रवचनसे संगृहीत

प्रकाशक—एक सत्संग-प्रेमी

संवत् २०३५ प्रथम संस्करण ३०००

पुस्तक-प्राप्ति-स्थान

(१) श्री आनन्दाश्रम, रानीबाजार, बीकानेर

(२) सद्भाव सेवा-संस्थान,
३२ जमुना लाल बजाज स्ट्रीट
कलकत्ता-७
फ़ोन-३३६६५४

मुद्रक—सत्य शिव प्रेस, दारानगर, वाराणसी

श्रीहरिः

नम्र निवेदन

परमपूज्य स्वामीजी श्रीरामसुखदासजी महाराज लगभग ५० वर्षोंसे भारतके विभिन्न स्थानोंपर घूमते रहे हैं। समय-समयपर उनके सत्संग-प्रवचन प्रकाशित करानेका आग्रह सत्संगी भाई-बहिनोंद्वारा होता रहता है।

इस वर्ष गीताभवन (ऋषिकेश) के वट-वृक्षतले होनेवाले ज्येष्ठ कृष्ण पञ्चमीके प्रवचनको अनेक सत्संगियोंने साधकोंके लिये विशेष उपयोगी बताया; अतः उसे लिपिबद्ध कर इस पुस्तिकाके रूपमें प्रकाशित किया गया है।

अपनी ऐहिक और पारलौकिक उन्नति चाहनेवाले और इसी जीवनमें शीघ्रातिशीघ्र भगवत्प्राप्तिरूप परम ध्येयकी प्राप्तिके इच्छुक प्रत्येक भाई-बहिनको इस पुस्तिकाका अध्ययन एवं गम्भीर मनन करना चाहिये—यही विनम्र प्रार्थना है।

गीताभवन (ऋषिकेश)
आषाढ़ शुक्ला चतुर्थी
संवत् २०३५

—प्रकाशक
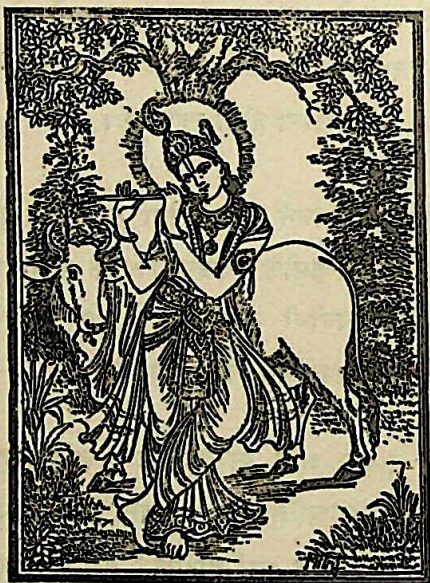
वंदे नंदनदनं देवं

॥ श्रीहरिः ॥

भगवत्प्राप्तिके लिये भविष्यकी अपेक्षा नहीं

एक बहुत ही मार्मिक बात है, जिसकी तरफ साधकोंका ध्यान बहुत कम है। यदि उसपर विशेष ध्यान दिया जाय तो जल्दी-से-जल्दी बहुत बड़ा लाभ हो सकता है।

साधकोंके भीतर एक गलत धारणा दृढ़तासे जमी हुई है कि जैसे संसारका कोई काम करते-करते होता है, तत्काल नहीं होता; वैसे ही (अर्थात् उसी रीतिसे) भगवान्की प्राप्ति भी साधन करते-करते होती है, तत्काल नहीं होती। ऐसी धारणा ही भगवत्प्राप्तिमें देर कर रही है। जैसे, यदि बालक माँके पीछे पड़ जाय कि मुझे तो अभी ही लड्डू दे, तो लड्डू बना हुआ नहीं होनेपर माँ उसे तत्काल कैसे बनाकर दे देगी? यद्यपि माँ-का अपने बालकपर बड़ा स्नेह, बड़ा प्यार है; क्योंकि उसके लिये अपने बालकसे बढ़कर प्यारा और कौन है? परन्तु फिर भी लड्डू बनानेमें समय तो लगेगा ही। ऐसे ही किसी स्थानपर जाना हो, किसी वस्तुका सुधार करना हो, किसी वस्तुको बदलना हो—इन सबमें समयकी अपेक्षा है। तात्पर्य यह है कि सांसारिक वस्तुको प्राप्त करनेमें तो समय लगता है, परन्तु भगवान्को प्राप्त करनेमें समय नहीं लगता—यह एक बहुत मार्मिक बात है।

हम सब-के-सब परमात्मरूप कल्पवृक्षकी छायामें रहते हैं। इस कल्पवृक्षकी छायामें रहते हुए यदि हम ऐसा भाव रखते हैं कि बहुत साधन करनेपर भविष्यमें कभी भगवत्प्राप्ति होगी, तो अपनी धारणाके अनुसार भगवान् भविष्यमें ही कभी मिलेंगे। यदि हम ऐसा भाव बना लें कि भगवान् तो अभी मिलेंगे, तो वे अभी ही मिल जायँगे। भगवान्‌ने स्वयं कहा भी है—

ये यथा मां प्रपद्यन्ते तांस्तथैव भजाम्यहम् ।

'जो मुझे जिस प्रकार भजते हैं, मैं भी उनको उसी प्रकार भजता हूँ।'

अतएव भगवान्‌की प्राप्तिमें भविष्य नहीं है। हमलोगोंकी भावनामें ही भविष्य है।

इस विषयमें एक बात विशेष महत्त्वकी है कि संसारके जितने भी काम हैं, सब-के-सब बनने और बिगड़नेवाले हैं। बननेवाले काममें देर लगती है, परन्तु बने-बनाये (विद्यमान) काममें देर कैसे लग सकती है ? परमात्मा भी विद्यमान हैं और हम भी विद्यमान हैं। उनके और हमारे बीच देश-काल आदिका कोई भी व्यवधान नहीं है; फिर परमात्माकी प्राप्तिमें देर क्यों लगनी चाहिये ?

भगवान् सब समयमें, सब देश (स्थान)में सब वस्तुओंमें तथा सब प्राणियोंमें विद्यमान हैं। समय, देश, वस्तु, प्राणी आदि सब-के-सब बदलनेवाले हैं अर्थात् निरन्तर नहीं रहते। इसके

विपरीत हम (स्वयं) भी निरन्तर रहनेवाले हैं, और भगवान् भी। ऐसे भगवान्‌को प्राप्त करनेके लिये हमने ऐसी धारणा बना ली है कि जब संसारका कोई साधारण काम भी शीघ्र नहीं होता, तब जो सबसे महान् हैं, उन भगवान्‌की प्राप्तिका कार्य शीघ्र कैसे हो जायगा? परन्तु वास्तवमें सबसे ऊँची वस्तु सबसे सहज-सुलभ भी होती है! भगवान् सबके लिये हैं और सबको प्राप्त हो सकते हैं। स्वयं हमने ही भगवान्‌की प्राप्तिमें आड़ लगा रखी है कि वे वैरागी-त्यागी पुरुषोंको मिलते हैं, हम गृहस्थियोंको कैसे मिलेंगे? वे जंगलमें रहनेवालोंको मिलते हैं, हम शहरमें रहने-वालोंको कैसे मिलेंगे? कोई अच्छे गुरु नहीं मिलेंगे, तो भगवान् कैसे मिलेंगे? कोई बढ़िया साधन नहीं करेंगे, तो भगवान् कैसे मिलेंगे? आजकल भगवत्प्राप्तिका मार्ग बतलानेवाले कोई अच्छे महात्मा भी नहीं रहे, तो हमें भगवान् कैसे मिलेंगे? हमारे भाग्य-में ही नहीं है तो भगवान् कैसे मिलेंगे? हम तो अधिकारी ही नहीं हैं, तो भगवान् हमें कैसे मिलेंगे? हमारे कर्म ही ऐसे नहीं हैं, तो भगवान् हमें कैसे मिलेंगे?—इस प्रकार न जाने कितनी आड़ें हमने स्वयं ही लगा रखी हैं। भगवान्‌को हमने इन आड़ोंके पहाड़ोंके ही नीचे दबा दिया है! ऐसी स्थितिमें बेचारे भगवान् क्या करें? हमें कैसे मिलें?

पार्वतीने 'तप करनेसे ही शिवजी मिलेंगे', ऐसा भाव रखकर स्वयं ही शिवजीकी प्राप्तिमें आड़ लगा दी थी; इसी कारण उन्हें

तप करना पड़ा*। तपस्याका भाव भीतर रहनेके कारण तप करने-से ही शिवजी मिले। इसी प्रकार भावके कारण ही ध्रुवको छः

---

* पार्वतीके मनमें पहले ही यह भाव हो गया था कि शिवजीकी प्राप्ति कठिन है—

उपजेउ शिव पदकमल सनेहू। मिलन कठिन मन भा संदेहू॥

(मानस १।६७।३)

बादमें देवर्षि नारदने कह दिया कि तप करनेसे ही शिवजी मिल सकते हैं—

दुराराध्य पै अहहिं महेसू। आसुतोष पुनि किएँ कलेसू॥
जो तपु करै कुमारि तुम्हारी। भाविउ मेटि सकहिं त्रिपुरारी॥

(१।६९।२-३)

माता-पितासे भी पार्वतीको तप करनेकी ही प्रेरणा मिली—

अब जौ तुम्हहि सुता पर नेहू। तौ अस जाइ सिखावनु देहू॥
करै सो तपु जेहिं मिलहिं महेसू। आन उपायँ न मिटिहि कलेसू॥

(१।७१।१)

स्वप्नमें भी पार्वतीको तप करनेकी ही शिक्षा मिली—

करहि जाइ तपु, सैलकुमारी। नारद कहा सो सत्य बिचारी॥
मातु पितहि पुनि यह मत भावा। तपु सुखप्रद दुख दोष नसावा॥

(१।७२।१)

इन्हीं सब कारणोंसे पार्वतीके मनमें यह भाव दृढ़ हो गया कि तप करनेसे ही शिवजी मिलेंगे, अन्यथा नहीं।

मासके तपके बाद भगवान् मिले। भगवान्‌के मिलनेमें वस्तुतः कोई देर नहीं लगी। जिस समय ऐसा भाव हुआ कि अब मैं भगवान्‌के बिना रह नहीं सकता, उसी समय भगवान् मिल गये।

किसी योग्यताके बदलेमें भगवान् मिलेंगे, यह बिल्कुल गलत धारणा है। यह सिद्धान्त है कि किसी मूल्यके बदलेमें जो वस्तु प्राप्त होती है, वह वस्तुतः उस मूल्यसे कम मूल्यकी ही होती है। यदि दूकानदार किसी वस्तुको १०० रुपयेमें बेचता है, तो निश्चय ही दूकानदारने उस वस्तुको १०० रुपयेसे कम मूल्यमें खरीदा होगा। इसी प्रकार यदि हम ऐसा मानते हैं कि विशेष योग्यता अथवा साधन, यज्ञ-दानादि बड़े-बड़े कर्मोंसे भगवान् मिलते हैं, तो भगवान् उनसे कम मूल्यमें ही हुए! परन्तु भगवान् किसीसे कम मूल्यके नहीं हैं *, इसलिये वे किसी साधन-सम्पत्तिसे खरीदे नहीं जा सकते †। यदि किसी मूल्यके बदलेमें भगवान् मिलते हैं,

---

* अर्जुन भगवान्‌से कहते हैं—

न त्वत्समोऽस्त्यभ्यधिकः कुतोऽन्यो लोकत्रयेऽप्यप्रतिमप्रभाव ॥
(गीता ११।४३)

'हे अनुपम प्रभाववाले! तीनो लोकोंमें आपके समान भी दूसरा कोई नहीं है फिर अधिक तो कैसे हो सकता है?'

† नाहं वेदैर्न तपसा न दानेन न चेज्यया।
शक्य एवंविधो द्रष्टुं दृष्टवानसि मां यथा ॥ (गीता ११।५३)

'हे अर्जुन! जिस प्रकार तुमने मुझको देखा है, इस प्रकार चतुर्भुज रूपवाला मैं न वेदोंसे, न तपसे, न दानसे और न यज्ञसे ही देखा जा सकता हूँ।'

तो ऐसे भगवान् मिलकर भी हमें क्या निहाल करेंगे ? क्योंकि उनसे बढ़िया (अधिक मूल्यकी) वस्तुएँ योग्यता, तप-दानादि तो हमारे पास पहलेसे ही हैं !

हम जैसा चाहते हैं, वैसे ही भगवान् हमें मिलते हैं। दो भक्त थे। एक भगवान् श्रीरामका भक्त था, दूसरा भगवान् श्रीकृष्ण-का। दोनों अपने-अपने भगवान् (इष्टदेव) को श्रेष्ठ वतलाते थे। एक वार वे जंगलमें गये। वहाँ दोनों भक्त अपने-अपने भगवान्को पुकारने लगे। उनका भाव यह था कि दोनोंमेंसे जो भगवान् शीघ्र आ जाय, वही श्रेष्ठ है। भगवान् श्रीकृष्ण शीघ्र प्रकट हो गये। इससे उनके भक्तने उन्हें श्रेष्ठ बतला दिया। थोड़ी देरमें भगवान् श्रीराम भी प्रकट हो गये। इसपर उनके भक्तने कहा कि आपने मुझे हरा दिया; भगवान् श्रीकृष्ण तो पहले आ गये, पर आप देर-से आये जिससे मेरा अपमान हो गया ! भगवान् श्रीरामने अपने भक्तसे पूछा—'तूने मुझे किस रूपमें याद किया था ?' भक्त बोला—'राजाधिराजके रूपमें।' तव भगवान् श्रीराम बोले—'बिना सवारीके राजाधिराज कैसे आ जायँगे। पहले सवारी तैयार होगी, तभी तो वे आयँगे !' कृष्ण-भक्तसे पूछा गया तो उसने कहा—'मैंने तो अपने भगवान्को गाय चरानेवालेके रूपमें याद किया था कि वे यहीं जंगलमें गाय चराते होंगे।' इसीलिये वे पुकारते ही तुरन्त प्रकट हो गये।

दुःशासनके द्वारा भरी सभामें चीर खींचे जानेके कारण द्रौपदीने

'द्वारकावासिन् कृष्ण' कहकर भगवान्‌को पुकारा, तो भगवान्‌के आनेमें थोड़ी देर लगी। इसपर भगवान्‌ने द्रौपदीसे कहा कि तूने मुझे 'द्वारकावासिन्' (अर्थात् द्वारकामें रहनेवाले) कहकर पुकारा, इसलिये मुझे द्वारका जाकर फिर वहाँसे आना पड़ा। यदि तू कहती कि यहींसे आ जाओ, तो मैं यहींसे प्रकट हो जाता।

भगवान् सब जगह हैं। जहाँ हम हैं, वहीं भगवान् भी हैं। भक्त जहाँसे भगवान्‌को बुलाता है, वहींसे भगवान् आते हैं। भक्तकी भावनाके अनुसार ही भगवान् प्रकट होते हैं।

जाके हृदयँ भगति जसि प्रीती। प्रभु तहँ प्रगट सदा तेहिं रीती॥

× × × ×

हरि ब्यापक सर्वत्र समाना। प्रेम तें प्रगट होहिं मैं जाना॥
देस काल दिसि बिदिसिहु माहीं। कहहु सो कहाँ जहाँ प्रभु नाहीं॥

(मानस १। १८४। २-३)

जब भगवान् श्रीकृष्ण गोपियोंके बीचसे अन्तर्धान हो गये, तो गोपियाँ पुकारने लगीं—

दयित दृश्यतां दिक्षु तावकास्त्वयि धृतासवस्त्वां विचिन्वते॥

(श्रीमद्भागवत १०। ३१। १)

'हे प्रिय! तुममें अपने प्राण समर्पित कर चुकनेवाली हम सब तुम्हारी प्रिय गोपियाँ तुम्हें सब ओर ढूँढ़ रही हैं, अतएव अब तुम तुरन्त दिख जाओ।'

गोपियोंकी पुकार सुनकर भगवान् उनके बीचमें ही प्रकट हो गये—

तासामाविरभूच्छौरिः स्मयमानमुखाम्बुजः ।
पीताम्बरधरः स्रग्वी साक्षान्मन्मथमन्मथः ॥

(श्रीमद्भागवत १० । ३२ । २)

'ठीक उसी समय उनके बीचोंबीच भगवान् श्रीकृष्ण प्रकट हो गये। उनका मुखकमल मन्द-मन्द मुसकानसे खिला हुआ था, गलेमें वनमाला थी, पीताम्बर धारण किये हुए थे। उनका यह रूप क्या था, सबके मनको मथ डालनेवाले कामदेवके मनको भी मथनेवाला था।'

इस प्रकार गोपियोंने 'प्यारे! दिख जाओ' (दयित दृश्यताम्)—ऐसा कहा तो भगवान् वहीं दिख गये। यदि वे कहतीं कि कहीं से आ जाओ, तो भगवान् वहींसे आते।

भगवान्की प्राप्ति साधनके द्वारा होती है— यह बात भी यद्यपि सच्ची है, परन्तु इस बातको मानकर चलनेसे साधकको भगवत्प्राप्ति देरसे होती है। यदि साधकका ऐसा भाव हो जाय कि मुझे तो भगवान् अभी मिलेंगे, तो उसे भगवान् अभी ही मिल जायँगे। वे यह नहीं देखेंगे कि भक्त कैसा है, कैसा नहीं है ? काँटोंवाले वृक्ष हों, घास हो, खेती हो, पहाड़ हो, रेगिस्तान हो या समुद्र हो;

वर्षा सवपर समानरूपसे वरसती है। वर्षा यह नहीं देखती कि कहाँ पानीकी आवश्यकता है और कहाँ नहीं ? इसी प्रकार जब भगवान् कृपा करते हैं तो यह नहीं देखते कि यह पापी है या पुण्यात्मा ? अच्छा है या बुरा ? वे सब जगह वरस जाते अर्थात् प्रकट हो जाते हैं *।

पापी-से-पापी पुरुषको भी भगवान् मिल सकते हैं (गीता ९।३०)। सदन कसाई और डाकुओंको भी भगवान् मिल गये थे ! भगवान् तो सर्वदा सर्वत्र विद्यमान हैं, केवल भावकी आवश्यकता है। अन्तःकरणके अशुद्ध होनेपर वैसा भाव नहीं बनता, यह बात ठीक होते हुए भी वस्तुतः साधकके लिये बाधक है। शास्त्रोंमें

---

* आदि शङ्कराचार्यजीने कहा है—

अयमुत्तमोऽयमधमो जात्या रूपेग सम्पदा वयसा।
श्लाघ्योऽश्लाघ्यो वेत्थं न वेत्ति भगवाननुग्रहावसरे॥
अन्तःस्वभावभोक्ता ततोऽन्तरात्मा महामेघः।
खदिरश्चम्पक इव वा प्रवर्षणं किं विचारयति॥

(प्रबोधसुधाकर २५२–२५३)

'किसीपर कृपा करते समय भगवान् ऐसा विचार नहीं करते कि यह जाति, रूप, धन और आयुसे उत्तम है या अधम ? स्तुत्य है या निन्द्य ?' 'यह अन्तरात्मा–(श्रीकृष्ण) रूपी महामेघ आन्तरिक भावोंका ही भोक्ता है; मेघ क्या वर्षाके समय इस बातका विचार करता है कि यह खदिर (खैर) है अथवा चम्पक (चम्पा) ?'

पतिव्रता स्त्रीकी बड़ी महिमा गायी गयी है कि भगवान् भी उसके वशमें हो जाते हैं। यदि कोई कहे कि हममें पातिव्रत-भाव नहीं बन सकता, तो यह उसकी भूल है। पापी-से-पापी पुरुषोंकी भी स्त्रियाँ पतिव्रता हुई हैं और श्रेष्ठ-से-श्रेष्ठ पुरुषोंकी भी। भगवान् श्रीरामकी पत्नी सीताजी भी पतिव्रता थीं और राक्षसराज रावणकी पत्नी मन्दोदरी भी। ऐसा नहीं कि श्रीरामकी पत्नी तो पतिव्रता हो सकती है, पर रावणकी पत्नी नहीं। पातिव्रत-धर्मका पालन करनेके कारण ही मन्दोदरी तो भगवान् श्रीरामको तत्त्वसे जानती थी, परन्तु रावण नहीं जानता था (द्रष्टव्य—मानस, लङ्का० १४-१५)।

वर्तमान युग (कलियुग)में तो भगवान् सुगमतासे मिलते हैं; क्योंकि अब उनके ग्राहक बहुत कम हैं। ग्राहक बहुत कम हों तो माल सस्ता मिलता है; क्योंकि तब बेचनेवालेको ग़रज़ होती है। इसलिये ऐसा भाव नहीं रखना चाहिये कि इस घोर कलियुगमें भगवान् इतनी सुगमतासे कैसे मिलेंगे ?

अपना दृढ़ विचार कर लें कि चाहे दुःख आये या सुख, अनुकूलता आये या प्रतिकूलता, हमें तो भगवान्को प्राप्त करना ही है। यदि हम पहले अपने अन्तःकरणको शुद्ध करनेमें लग जायँगे, तो भगवत्प्राप्तिमें बहुत देर लगेगी। हमारे उद्योग करनेकी अपेक्षा भगवान्की अनन्त अपार कृपाशक्ति हमें बहुत शीघ्र शुद्ध कर देगी। बच्चा कीचड़से लिपटा भी हो, यदि माँकी गोदमें चला जाय तो माँ स्वयं ही उसे साफ कर देती है।

एक राजा सायंकाल महलकी छतपर टहल रहे थे। सहसा उनकी दृष्टि नीचे बाजारमें घूमते हुए एक संतपर पड़ी। संत अपनी मस्तीमें ऐसे चल रहे थे कि मानो उनकी दृष्टिमें संसार है ही नहीं। राजा अच्छे संस्कारवाले पुरुष थे। उन्होंने अपने आदमियोंको उन संतको तत्काल ऊपर ले आनेकी आज्ञा दी। आज्ञा पाते ही राजपुरुषोंने ऊपरसे ही रस्से लटकाकर उन संतको (रस्सोंमें फँसाकर) ऊपर खींच लिया। इस कार्यके लिये राजाने उन संतसे क्षमा माँगी और कहा कि एक प्रश्नका उत्तर पानेके लिये ही मैंने आपको कष्ट दिया। प्रश्न यह है कि भगवान् शीघ्र कैसे मिलें ? संतने कहा—'राजन् ! इस बातको तुम जानते ही हो।' राजाने पूछा—'कैसे ?' संत बोले—'यदि मेरे मनमें तुमसे मिलनेका विचार आता तो कई अड़चनें आतीं और बहुत देर लगती। पता नहीं मिलना सम्भव भी होता या नहीं। पर जब तुम्हारे मनमें मुझसे मिलनेका विचार आया, तब कितनी देर लगी ? राजन् ! इसी प्रकार यदि भगवान्के मनमें हमसे मिलनेका विचार आ जाय, तो फिर उनके मिलनेमें देर नहीं लगेगी।' राजाने पूछा—'भगवान्के मनमें हमसे मिलनेका विचार कैसे आ जाय ?' संत बोले—'तुम्हारे मनमें मुझसे मिलनेका विचार कैसे आया ?' राजाने कहा—'जब मैंने देखा कि आप एक ही धुनमें चले जा रहे हैं और सड़क, बाजार, दूकानें, मकान, मनुष्य आदि किसीकी भी तरफ आपका ध्यान नहीं है, तब मेरे मनमें आपसे मिलनेका विचार आया।' संत बोले—'राजन् ! ऐसे ही तुम एक ही धुनमें भगवान्की तरफ लग जाओ, अन्य किसीकी भी तरफ मत देखो,

उनके विना रह न सको, तो भगवान्‌के मनमें तुमसे मिलनेका विचार आ जायगा और वे तुरन्त मिल जायँगे।' *

भगवान् ही हमारे हैं, दूसरा कोई हमारा है ही नहीं। भगवान् कहते हैं—

'सर्वस्य चाहं हृदि संनिविष्टः'

(गीता १५। १५)

'मैं ही सब प्राणियोंके हृदयमें अन्तर्यामी-रूपसे स्थित हूँ।'

मया ततमिदं सर्वं जगदव्यक्तमूर्तिना।

(गीता ९। ४)

'मुझ निराकार परमात्मासे यह जगत् (जलसे बर्फके सदृश) परिपूर्ण है।'

भगवान् हृदयमें ही नहीं, अपितु दीखनेवाले समस्त संसारके कण-कणमें विद्यमान हैं। ऐसे सर्वत्र विद्यमान परमात्माको जब हम सच्चे हृदयसे देखना चाहेंगे, तभी वे दीखेंगे। यदि हम संसार-को देखना चाहेंगे तो भगवान् बीचमें नहीं आयेंगे, संसार ही

---

* अनन्यचेताः सततं यो मां स्मरति नित्यशः।
तस्याहं सुलभः पार्थ नित्ययुक्तस्य योगिनः॥ (गीता ८। १४)

'हे अर्जुन! जो पुरुष मुझमें अनन्यचित्त होकर सदा ही निरन्तर मुझ पुरुषोत्तमको स्मरण करता है, उस नित्य-निरन्तर मुझमें युक्त हुए योगीके लिये मैं सुलभ हूँ अर्थात् उसे सहज ही प्राप्त हो जाता हूँ।'

दीखेगा। हम संसारको देखना नहीं चाहते, उससे हमें कुछ भी नहीं लेना है, न उसमें राग करना है न द्वेष, हमें तो केवल भगवान्‌से प्रयोजन है—इस भावसे हम एक भगवान्‌से ही घनिष्ठता कर लें। भगवान् हमारी बात सुनें या न सुनें, मानें या न मानें, हमें अपना लें या ठुकरा दें—इसकी कोई परवाह न करते हुए हम भगवान्‌से अपना अटूट सम्बन्ध (जो कि नित्य है) जोड़ लें *। जैसे माता पार्वतीने कहा था—

जन्म कोटि लगि रगर हमारी। बरउँ संभु न त रहउँ कुआरी॥
तजउँ न नारद कर उपदेसू। आपु कहहिं सत बार महेसू॥
(मानस १।८०।३)

पार्वतीके मनमें यह भाव था कि शिवजीमें ऐसी शक्ति ही नहीं है कि वे मुझे स्वीकार न करें। इसी प्रकार हम सबका सम्बन्ध भगवान्‌के साथ है। हम भगवान्‌से विमुख भले ही हो जायँ, पर भगवान् हमसे विमुख कभी हुए नहीं, हो सकते नहीं। हमारा त्याग करनेकी उनमें शक्ति नहीं है।

बच्चा खेलना छोड़ दे और रोने लग जाय, तो माँको अपना सब काम छोड़कर उसके पास आना पड़ता है और उसे गोदमें बैठाकर दुलारना पड़ता है; परन्तु यदि बच्चा खेलमें लगा रहे तो

---

* वस्तुतः यद्यपि भगवान्‌के साथ हमारा सदासे ही अटूट सम्बन्ध है, तथापि भगवान्‌से विमुख हो जानेके कारण हमें उस सम्बन्धका अनुभव नहीं होता।

माँ निश्चिन्त रहती है। इसी प्रकार यदि हम भगवान्‌के लिये व्याकुल न होकर सांसारिक वस्तुओंमें ही प्रसन्न रहते हैं, तो भगवान् निश्चिन्त रहते हैं और हमसे मिलने नहीं आते। यदि बच्चा लगातार रोने लग जाय और माँके बिना किसी भी वस्तु (खिलौने आदि) से प्रसन्न न हो, तो घरके सभी लोग बच्चेके पक्षमें हो जाते हैं और उसकी माँको कहते हैं—'बच्चा रो रहा है और तुम काममें लगी हो! आग लगे तुम्हारे कामको! शीघ्र बच्चेको गोदमें ले लो।' उस समय माँ कितना ही आवश्यक कार्य क्यों न कर रही हो, बच्चेके रोनेके आगे उस कार्यका कोई मूल्य नहीं रहता। इसी प्रकार हम एकमात्र भगवान्‌के लिये रोने लग जायँ, तो भगवद्धामके सब संतजन हमारे पक्षमें हो जायँ! वे सभी कहने लग जायँ—'महाराज! बच्चा रो रहा है; आप मिलनेमें देर क्यों कर रहे हैं?' फिर भगवान्‌के आनेमें कोई देर नहीं लगती। हाँ, जब बच्चा खिलौनोंसे खेल भी रहा हो और ऊपरसे ऊँ···ऊँ···· भी कर रहा हो, तब उसे माँ गोदमें नहीं लेती। इसी प्रकार हम सांसारिक खिलौनोंसे भी खेलते हों और रोनेका ढोंग भी करते हों, तब भगवान् नहीं आते। वे हमारे आन्तरिक भावको देखते हैं, क्रियाको नहीं। मान-आदर, सुख-आराम, धन-सम्पत्ति, सिद्धियाँ आदि सब सांसारिक खिलौने हैं। माँकी गोद, उसका प्यार, खिलौने आदि सब कुछ बच्चेके लिये ही होते हैं। ऐसे ही भगवान्‌की गोद, उनका प्यार तथा उनके पास जो भी सामग्री है, सब भक्तके लिये ही होती है। भगवान्‌के लिये भक्तसे बढ़कर कुछ भी

नहीं है। यदि हम किसी भी वस्तुमें प्रसन्न न होकर भगवान्‌को पुकारने लगें, तो वे तत्काल आ जायँ। इसमें भविष्यकी क्या बात है? माँ बच्चेकी योग्यताको देखकर उसके पास नहीं आती। वह यह नहीं देखती कि बच्चा बहुत सुन्दर है, विद्वान् है या धनवान् है। बच्चेमें माँको बुलानेकी यही एक योग्यता है कि वह केवल माँको चाहता है और माँके सिवा दूसरी किसी भी वस्तुसे प्रसन्न नहीं होता।

भगवान्‌के साथ हमारा सम्बन्ध स्वतन्त्रतासे, स्वाभाविक है। सांसारिक पदार्थोंके साथ हमारा सम्बन्ध स्वाभाविक नहीं है। मन, बुद्धि, इन्द्रियाँ, शरीर आदि सब पदार्थ निरन्तर बहे जा रहे हैं। उनके साथ हमारा कोई सम्बन्ध नहीं है। भगवान् ही हमारे हैं। बच्चेमें कोई योग्यता, विद्वत्ता, शूरवीरता आदि नहीं होती, केवल उसमें 'माँ मेरी है'—ऐसा माँमें मेरापन होता है। इस मेरापनमें बड़ी भारी शक्ति है, जो भगवान्‌को भी खींच सकती है। इसीके कारण प्रह्लादने पत्थरसे भी भगवान्‌को निकाल लिया—

प्रेम बदौं प्रहलादहिको, जिन पाहनतें परमेस्वरु काढ़े॥

(कवितावली १२७)

संसारका हमसे प्रतिक्षण वियोग हो रहा है। शरीर, कुटुम्ब, धन-सम्पत्ति आदि सब पदार्थ पहले नहीं थे और बादमें भी नहीं रहेंगे। दृश्यमात्र निरन्तर अदर्शनको प्राप्त होता चला जा रहा है। कोई पदार्थ ६० वर्षतक रहनेवाला हो, तो एक वर्ष बीत जानेपर वह ५९ वर्षका ही रहेगा; क्योंकि वह निरन्तर नाशकी ओर

जा रहा है। हम नहीं रहनेवाले सांसारिक पदार्थोंको अपना मानते हैं और सदा रहनेवाले परमात्माको अपना नहीं मानते, यह बड़ी भारी भूल है। भगवान् वर्तमानमें हैं और हमारे हैं—इस बातपर हम दृढ़तापूर्वक डट जायँ, तो भगवान् वर्तमानमें ही मिल जायँगे। केवल उत्कट अभिलाषा * होनेकी देर है, भगवान्‌के मिलनेमें देर नहीं। अपने भावके अनुसार चाहे आज भगवान्‌को प्राप्त कर लो, चाहे भविष्यमें—वर्षों या जन्मोंके बाद!

* भगवत्प्राप्तिकी उत्कट अभिलाषा जाग्रत् करनेका उपाय है—सम्पूर्ण सांसारिक इच्छाओंका त्याग और दूसरे हमसे जो न्याययुक्त इच्छा करें, उसे यथाशक्ति पूरी कर देना।

अपना दृढ़ विचार कर लें कि चाहे दुःख आये या सुख, अनुकूलता आये या प्रतिकूलता, हमें तो भगवान्‌को प्राप्त करना ही है। यदि हम पहले अपने अन्तःकरणको शुद्ध करनेमें लग जायँगे, तो भगवत्प्राप्तिमें बहुत देर लगेगी। हमारे उद्योग करनेकी अपेक्षा भगवान्‌की अनन्त अपार कृपाशक्ति हमें बहुत शीघ्र शुद्ध कर देगी। बच्चा कीचड़से लिपटा भी हो, यदि माँकी गोदमें चला जाय तो माँ स्वयं ही उसे साफ कर देती है।

—इसी पुस्तकसे

कवर मुद्रक : जीवन शिक्षा मुद्रणालय (प्रा०) लि०, गोलघर, वाराणसी